DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA

ISSN: 2581-4885

INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF YAGYA RESEARCH

Peer Reviewed Research Journal

VOLUME 2 ISSUE 2

PUBLISHED BY:
DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, Shantikunj, Haridwar - 249411 (UTTARAKHAND)

www.dsvv.ac.in

OPEN ACCESS ONLINE JOUNRAL

Research Article

वैदिक संस्कृति में यज्ञ - एक समग्र जीवन दर्शन एवं साधना पथ

सुखनन्दन सिंह[1*]

[1]प्रो. एवं अध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार,

*संवादी लेखक: सुखनन्दन सिंह. ईमेल: sukhnandan.singh@dsvv.ac.in

https://doi.org/10.36018/ijyr.v2i2.45

सारांश. यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है। हमारे धर्म में जितनी महानता यज्ञ को दी गई है, उतनी और किसी को नहीं दी गयी है। जीवन का कोई भी कर्म हो, शायद ही यज्ञ के बिना पूर्ण माना जाता हो। जन्म से पूर्व से लेकर मरण पर्यन्त सम्पन्न होने वाले संस्कार यज्ञ के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं। यज्ञ के चिकित्सकीय गुण एवं वातावरण शुद्धि के लाभ सर्वविदित हैं। यज्ञ से कामना सिद्धि के अनगिन उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। इन सबके साथ यज्ञ में जो प्रेरणा प्रवाह निहित है, साधना का समग्र विधान विद्यमान है, वह स्वयं में विलक्ष्ण है। यज्ञ में निहित जीवन दर्शन व्यक्ति, परिवार, समाज- संस्कृति, प्रकृति-पर्यावरण, सकल सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड को स्वयं में समेटे हुए है। इसमें भौतिक विकास-आध्यात्मिक उन्नयन, इहलोक-परलोक, विज्ञान-अध्यात्म जीवन के दोनों विरोधी ध्रुब अपनी समग्रता में गुंथे हुए मिलते हैं, जो यज्ञ के दर्शन की विशिष्टता है। साथ ही इसमें जीवन साधना का वह पथ निर्दिष्ट है, जो व्यक्ति को जहाँ खड़ा है, वहीं से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है और व्यक्तित्व के मर्म को स्पर्श करते हुए, उसके रुपाँतरण के साथ चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है और व्यक्ति के उत्कर्ष के साथ समष्टि के कल्याण को सुनिश्चित करता है। वर्तमान शोध पत्र में यज्ञ से जुड़े इन्हीं पक्षों को प्रकाशित करने का प्रयास है, जिसमें इसके समग्र जीवन दर्शन एवं साधना पथ को स्पष्ट किया जा रहा है।

कूट शब्द. यज्ञ, वैदिक संस्कृति, समग्र जीवन दर्शन, साधना पथ, व्यक्तित्व रुपाँतरण।

वैदिक संस्कृति का आधार

यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है। हमारे धर्म में जितनी महानता यज्ञ को दी गई है, उतनी और किसी को नहीं दी गयी है। हमारा कोई भी शुभ-अशुभ धर्म कृत्य यज्ञ के बिना पूर्ण नहीं होता (1)। वेदों के सर्वपुरातन ग्रंथ ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि के रुप में इसके स्वरुप की प्रार्थना के साथ शुरु होता है, जिसमें अग्नि को पुरोहित की संज्ञा दी गई है (2)। वैदिक युग से ही गायत्री उपासना के साथ यज्ञ के युग्म को पूरक माना गया। आश्चर्य नहीं कि वैदिक सस्कृति में गायत्री को माता एवं यज्ञ को पिता की संज्ञा दी गई। इस युग में गायत्री-यज्ञ के प्रवर्तक युग के विश्वामित्र युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्यजी के शब्दों में, यज्ञ अपने में एक समर्थ और समग्र दर्शन है। इसकी सरल और सुबोध प्रेरणाओं में मनुष्य को उदार एवं उदात बनाने के वे सारे तत्व मौजूद हैं, जो संसार के किसी अन्य दर्शन में नहीं हैं। यही कारण है कि उसे भारतीय संस्कृति का पिता कहा गया है। पिता अर्थात् पालनकर्त्ता। समाज का परिपालन एवं संरक्षण देने वाला। यज्ञीय दर्शन व्यक्ति एवं समाज को श्रेष्ठ, शालीन एवं समुन्नत बनाने में समर्थ है। अपने में वह समग्र है। यज्ञीय प्रेरणाओं को व्यवहार में उतारा जा सके तो स्थायी सुख-शांति का मजबूत आधार बन सकता है (3)।

आश्चर्य नहीं कि हर युग में यज्ञ वैदिक संस्कृति का मेरुदण्ड रहा। जीवन का शायद ही कोई कर्म हो, जो यज्ञ के बिना पूर्ण माना जाता हो। जन्म के पूर्व से लेकर मरणपर्यन्त सम्पन्न होने वाले संस्कार यज्ञ के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं। यज्ञ के चिकित्सकीय गुण एवं वातावरण शुद्धि के लाभ सर्वविदित हैं। यज्ञ से कामना सिद्धि के अनगिन उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। भारतीय संस्कृति के हर युग में यज्ञ के विभिन्न स्वरुपों की चर्चा पढ़ सकते हैं।

यजुर्वेद में स्पष्ट घोषणा है कि, सुख-शांति चाहने वाला कोई व्यक्ति यज्ञ का परित्याग नहीं करता। जो यज्ञ को छोड़ता है, उसे यज्ञ रुप परमात्मा भी छोड़ देते हैं। सबकी उन्नति के लिए आहुतियाँ यज्ञ में छोड़ी जाती हैं, जो नहीं छोड़ता, वह राक्षस हो जाता है (4)। रामायण काल के पुत्रेष्टि यज्ञ, सर्पयज्ञ, अश्वमेध यज्ञ चर्चित प्रकरण हैं। महाभारत काल में राजसूय यज्ञ की विशिष्ट चर्चा होती है। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि असुर और सुर सभी पुण्य के मूल हेतु यज्ञ के लिए प्रयत्न करते हैं। सत्पुरुषों को सदा यज्ञ-परायण होना चाहिए। यज्ञों से ही बहुत से सत्पुरुष देवता बने हैं (5)। वास्तव में यज्ञ जीवन के सांसारिक उत्कर्ष के साथ परमपुरुषार्थ को सिद्ध करने वाला साधन है।

वैदिक संस्कृति के मर्म ग्रंथ, वेदों के निचोड़ तथा उपनिषदों के सार श्रीमद्भगवतगीता में यज्ञ के स्वरुप, दर्शन एवं महत्व पर विशद एवं विहंगम प्रकाश डाला गया है।

श्रीमद्भग्वदगीता में यज्ञ

गीता में श्रेष्ठ, पुण्य, निष्काम एवं परमार्थिक कर्म को यज्ञ कर्म की संज्ञा दी गयी है, जिसे जीवन के चरमपुरुषार्थ मोक्ष का कारक माना गया है। यज्ञकर्म के सिवाय अन्य कर्मों में लगा हुआ मनुष्य कर्मों में बंधता है। इसलिए हे अर्जुन, आसक्ति से रहित हुआ उस परमेश्वर के निमित्त कर्म का भली प्रकार आचरण कर (6)। प्रजापति में कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा को रचकर कहा कि यह यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त् होवो और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित कामनाओं के देनेवाला होवे (7)। इस यज्ञ के द्वारा देवताओं की उन्नति करो और वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें। इस प्रकार आपस में उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होवोगे (8)। यज्ञ द्वारा बढ़ाये हुए देवतालोग तुम्हारे लिये बिना मांगे ही प्रिय भोगों को देंगे, उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष इनके लिये बिना दिये ही भोगता है वह निश्चय चोर है (9)। यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर पोषण के लिये ही पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं (10)। इस तरह श्रीमद्भगवगीता में यज्ञ का परमकल्याणकारी दर्शन मनुष्यमात्र के अभिन्न सहचर के रुप में प्रतिपादित है। आश्चर्य नहीं कि वैदिक संस्कृति ने यज्ञ को इसी भाव के साथ जीवन-मरण का साथी मानकर इसकी प्रतिष्ठा की है।

इस तरह श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ के विभिन्न प्रकार गिनाए गए हैं, यथा – ब्रह्मयज्ञ (11), देवयज्ञ (12), इंद्रियसंयमरुपी यज्ञ (13), अंतःकरण संयमरुपी यज्ञ (14), तपयज्ञ, योग यज्ञ एवं स्वाध्यायरुपी ज्ञानयज्ञ (15), प्राणयज्ञ (16) आदि। इनका फल गीता में इहलोक एवं परलोक को सिद्ध करने वाला तथा मुक्ति का हेतु बताया गया है। हे अर्जुन, यज्ञों के परिणामरुप ज्ञानामृत को भोगने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ रहित मनुष्य को इस लोक में ही सुख नहीं मिल सकता, फिर परलोक का सुख तो होगा ही कैसे (17)। इस तरह यज्ञ को श्रीमद्भगवद्गीता में इहलोक एवं परलोक को सिद्ध करने वाला साधन माना गया है।

यज्ञ का व्यवहारिक तत्वदर्शन

यज्ञ, यज धातु से बना है, जिसके तीन अर्थ हैं, जो इसके व्यवहारिक एवं समग्र स्वरुप पर प्रकाश डालते हैं। 1.देवपूजन, 2.संगतिकरण और 3.दान। इन तीनों प्रवृतियों में व्यक्ति एवं समाज के उत्कर्ष संभावनाएं विद्यमान हैं। देवपूजन का अर्थ है – परिष्कृत व्यक्तित्व, दैवी सद्गुणों का अनुगमन। संगतिकरण, अर्थात् एकता, सहकारिता, संघबद्धता। दान अर्थात् समाज परायणता, विश्व कौटुम्बिकता एवं उदार सहृदयता। इन तीनों प्रवृतियों का प्रतिनिधित्व यज्ञ करता है (18)। और सरल भाषा में यज्ञ का अर्थ दान, एकता, उपासना से हैं। यज्ञ का वेदोक्त आयोजन शक्तिशाली मन्त्रों का विधिवत उच्चारण, विधिपूर्वक बनाए हुए कुण्ड, शास्त्रोक्त समिधाएं तथा सामग्रियाँ जब ठीक विधानपूर्वक हवन की जाती हैं, उनका दिव्य प्रभाव विस्तृत आकाश मण्डल में फैल जाता है। उसके प्रभाव के फलस्वरुप प्रजा के अन्तःकरण में प्रेम, एकता, सहयोग, सद्भाव, उदारता, ईमानदारी, संयम, सदाचार, आस्तिकता आदि सद्भावों की स्वयंमेव आविर्भाव होने लगता है (19)।

यज्ञ अग्नि का प्रेरणा प्रवाह

अग्नि यज्ञ का केंद्रीय तत्व है, जो अजस्र प्रेरणाओं से भरा हुआ है। य़ज्ञीय प्रेरणाओं का महत्व समझाते हुए ऋग्वेद में यज्ञाग्नि को पुरोहित कहा गया है। उसकी शिक्षाओं पर चलकर लोक-परलोक दोनों सुधारे जा सकते हैं (20)। इसमें निहित शिक्षाएं इस प्रकार हैं (21)–

1. जो कुछ बहुमूल्य पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं, उसे वह अपने पास संग्रह नहीं रखती, वरन् सर्वसाधारण के उपयोग के लिए वायुमण्डल में बिखेर देती है। इसी तरह हमारी शिक्षा, समृद्धि, प्रतिभा आदि विभूतियों का न्यूनतम उपयोग हमारे लिए और अधिकाधिक उपयोग जन-कल्याण के लिए होना चाहिए।
2. जो वस्तु अग्नि के सम्पर्क में आती है, उसे वह दुरदुराती नहीं, वरन् अपने में आत्मसात करके अपने समान ही बना लेती है। जो पिछड़े या छोटे या बिछुड़े व्यक्ति अपने सम्पर्क में आएं, उन्हें हम आत्मसात करने और समान बनाने का आदर्श पूरा करें।
3. अग्नि की लौ कितना ही दबाव पड़ने पर भी नीचे की ओर नहीं होती, वरन् ऊपर को ही रहती है। इसी तरह हम प्रलोभन, भय एवं विषम परिस्थितियों में अपने विचारों व कार्यों की अधोगति न होने दें व अपना संकल्प और मनोबल अग्निशिखा की तरह ऊँचा ही रखें।
4. अग्नि जब तक जीवित रहती है, ऊष्णता एवं प्रकाश की अपनी विशेषताएं नहीं छोड़ती। उसी प्रकार हमें जीवन भर पुरुषार्थी और कर्तव्यनिष्ठ बनकर, अपनी गतिशीलता की गर्मी और धर्म-परायणता की रोशनी घटने नहीं देना चाहिए।
5. यज्ञाग्नि का अवशेष भस्म मस्तक पर लगाते हुए हमें सीखना होता है कि मानव जीवन का अन्त मुट्ठीभर भस्म के रुप में शेष रह जाता है। अपने इस अन्त को ध्यान में रखते हुए जीवन के सदुपयोग का प्रयत्न करना चाहिए।
6. अपनी थोड़ी सी वस्तु को वायुरुप बनाकर उन्हें समस्त जड़-चेतन प्राणियों को बिना किसी अपने-

पराये, मित्र-शत्रु का भेद किये गुप्तदान के रुप में खिला देना एक विलक्षण शिक्षण है, जो एक श्रेष्ठ ब्रह्मभोज का पुण्य प्रदान करता है।

वस्तुतः यज्ञ व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण की एक सशक्त विधा है, जिसके माध्यम से सुसंस्कारों की प्रतिष्ठापना होती है। यज्ञ अंतःकरण में श्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना की एक सफल मनोवैज्ञानिक विधि है (22)।

यज्ञ का साधनात्मक विधान

वैदिक साधना पद्धति में यज्ञ को अनिवार्य रुप से जोड़ा गया है। आचार्यजी के शब्दों में, योगी को याज्ञिक भी होना चाहिए (23)। जप के दशवें हिस्से का हवन किया जाता है। यज्ञ को व्यक्तित्व के रुपाँतरण के एक गहन मनो-आध्यात्मिक प्रयोग के रुप में देखा जा सकता है।

1. *व्यक्तित्व रुपाँतरण की भट्टी*

   आचार्यश्री के शब्दों में, यज्ञादि कर्मकाण्ड द्वारा देव आवाहन, मंत्र प्रयोग, संकल्प एवं सद्भावनाओं की सामूहिक शक्ति से एक ऐसी भट्टी जैसी ऊर्जा पैदा की जाती है, जिसमें मनुष्य की अंतःवृत्तियों तक को गलाकर इच्छित स्वरुप में ढालने की स्थिति में लाया जा सकता है। गलाई के साथ ढलाई के लिए उपयुक्त प्रेरणाओं का संचार भी किया जा सके, तो भाग लेने वालों में वांछित, हितकारी परिवर्तन बड़ी मात्रा में लाये जा सकते हैं (24)। यज्ञ में निहित गूढ़ मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करते हुए आचार्य़श्री लिखते हैं, इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित होती हैं, मन सुख की कल्पना में डूबना चाहता है, बुद्धि विचारों से प्रभावित होती है, परन्तु चित्त और अन्तःकरण में जहाँ स्वभाव और आकांक्षाएं उगती रहती हैं, उसे प्रभावित करने में ऊपर के सारे उपचार अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। यज्ञ संस्कारादि ऐसे सूक्ष्म-विज्ञान के प्रयोग हैं, जिनके द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व का कायाकल्प कर सकने वाली उस गहराई को भी प्रभावित, परिवर्तित किया जा सकता है (25)। आचार्यश्री के शब्दों में, यज्ञ की पहुँच अन्तःकरण, अन्तर्मन तक, सुपरमन तक है। वह व्यक्ति की विचारणा, आकांक्षा, भावना, श्रद्धा, निष्ठा, प्रज्ञा को प्रभावित करता है, उनका परिशोधन और अभिवर्धन भी (26)।

   इस तरह यज्ञ व्यक्तित्व के रुपाँतरण का एक गहरा मनो-आध्यात्मिक प्रयोग है, जिससे मनुष्य के प्रसुप्त देवत्व के जागरण का प्रयोजन सिद्ध होता है।

2. *परिवार में संस्कारों का रोपण*

   आचार्यश्री के शब्दों में, पूर्वकाल में पुत्र प्राप्ति के लिए ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराते हों सो बात नहीं, जिनको बराबर सन्तानें प्राप्त होतीं थीं, वे भी सद्गुणीं एवं प्रतिभावान् सन्तान प्राप्त करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ कराते थे। गर्भाधान, सीमान्त, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार बालक के जन्म लेते-लेते अबोध अवस्था में ही हो जाते थे। इनमें से प्रत्येक में हवन होता था, ताकि बालक के मन पर दिव्य प्रभाव पड़ें और वह बड़ा होने पर पुरुष सिंह एवं महापुरुष बनें। प्राचीनकाल का इतिहास साक्षी है कि जिन दिनों इस देश में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी, उन दिनों यहाँ महापुरुषों की कमी नहीं थी। आज यज्ञ का तिरस्कार करके अनेक दुर्गुणों, रोगों, कुसंस्कारों और बुरी आदतों से ग्रसित बालकों से ही हमारे घर भरे हुए हैं (27)।

   इस तरह यज्ञ पीढ़ियों को संस्कारित करने के अभिनव प्रयोग थे, जो पारिवारिक स्तर पर विभिन्न संस्कारों के माध्यम से सम्पन्न होते थे।

3. *समाज निर्माण एवं वातावरण का सूक्ष्म परिष्कार*

आचार्य़श्री के शब्दों में, यज्ञ से अदृश्य आकाश में जो आध्यात्मिक विद्युत तरंगें फैलती हैं, वे लोगों के मनों में द्वेष, पाप, अनीति, वासना, स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराईयों को हटाती हैं। फलस्वरुप, उससे अनेकों समस्याएं हल होती हैं। अनेकों उलझनें, गुत्थियाँ, पेचीदगियाँ, चिन्ताएं, भय, आशंकाएं तथा बुरी संभावनाएं समूल नष्ट हो जाती हैं। राजा, धनी, सम्पन्न लोग, ऋषि-मुनि बडे-बड़े यज्ञ करते थे, जिससे दूर-दूर तक का वातावरण निर्मल होता था और देश-व्यापी, विश्व-व्यापी बुराइयाँ तथा उलझनें सुलझतीं थीं (28)।

इस तरह व्यष्टि से लेकर समष्टि तक के हित में यज्ञ अपनी महती भूमिका निभाता है।

वस्तुतः अग्नि का मुख ईश्वर है। उसमें जो कुछ खिलाया जाता है, वह सच्चे अर्थों में ब्रह्मभोज है। ब्रह्म अर्थात् परमात्मा, भोज अर्थात् भोजन, परमात्मा को भोजन कराना, यज्ञ के मुख में आहुति छोड़ना ही है (29)। एक प्रकार से वह देवताओं के बैंक में जमा हो जाता है और उचित अवसर पर सन्तोषजनक ब्याज समेत बापिस मिल जाता है। विधिपूर्वक शास्त्रीय पद्धति और विशिष्ट उपचारों तथा विधानों के साथ किए गए हवन तो और भी महत्वपूर्ण होते हैं। वे एक प्रकार से दिव्य अस्त्र बन जाते हैं। पूर्वकाल में यज्ञ के द्वारा मनोवांछित वर्षा होती थी, यौद्धा लोग युद्ध में विजयश्री प्राप्त करते थे और योगी आत्म-साक्षात्कार करते थे। यज्ञ को वेदों में कामधुक् कहा है, जिसका आशय है कि वह मनुष्य के सभी अभावों और बाधाओं को दूर करने वाला है (30)।

उपंसहार

इस तरह यज्ञ एक समग्र जीवन दर्शन है, जिसमें व्यक्तित्व के रुपाँतरण का गहरा मनो-आध्यात्मिक विज्ञान निहित है, व्यक्ति के लौकिक उत्कर्ष एवं आध्यात्मिक विकास का विधान विद्यामान है। साथ ही इसमें परिवार, समाज, प्रकृति-पर्यावरण, सकल सृष्टि एवं समष्टि का कल्याण निहित है।

संदर्भ

1. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, गायत्री महाविज्ञान, भाग-1, संयुक्त संस्करण-2009, पृ.127
2. वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य और भगवतीदेवी शर्मा (संपादक). ऋग्वेद-1,1,1. युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-281003, 1995
3. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, यज्ञ विश्व का सर्वोत्कृष्ट दर्शन, अखण्ड ज्योति, वर्ष 44, अंक9, पृ.47
4. वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य और भगवतीदेवी शर्मा (संपादक). यजु.-2.23. युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-281003, 1995
5. महाभारत आश्व.3.6,7. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
6. गीता-3,9. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
7. गीता-3,10. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
8. गीता-3,11. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
9. गीता-3,12. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
10. गीता-3,1. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
11. गीता-4,24. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
12. गीता-4,25. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
13. गीता-4,26. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
14. गीता-4,27. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
15. गीता-4,28. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
16. गीता-4,29. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
17. गीता-4,31. गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
18. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, देवसंस्कृति का मेरुदण्ड यज्ञ, अखण्ड ज्योति, वर्ष 55, अंक11, पृ.6
19. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, गायत्री महाविज्ञान, भाग-1, संयुक्त संस्करण-2009, पृ.131
20. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, कर्मकाण्ड भास्कर, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ.28, 2010

21. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, कर्मकाण्ड भास्कर, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ. 28-29, 2010
22. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, यज्ञ विश्व का सर्वोत्कृष्ट दर्शन, अखण्ड ज्योति, वर्ष 44, अंक9, पृ.47-48, 1944
23. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, ब्रह्मवर्चस की पंचाग्नि विद्या, प.224
24. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, कर्मकाण्ड भास्कर, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ.7, 2010
25. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, कर्मकाण्ड भास्कर, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ.8, 2010
26. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा, अग्निहोत्र और यज्ञ का अंतर, अखण्ड ज्योति, वर्ष 49, अंक 10, पृ.50
27. गायत्री महाविज्ञान, भाग-1, संयुक्त संस्करण-2009, प.131
28. गायत्री महाविज्ञान, भाग-1, संयुक्त संस्करण-2009, पृ.131
29. गायत्री महाविज्ञान, भाग-1, संयुक्त संस्करण-2009, पृ.131
30. गायत्री महाविज्ञान, भाग-1, संयुक्त संस्करण-2009, पृ.132